फ़ासले
कायम
हैं
योगेन्द्र किसलय

जिन्हें
मैं कुछ भी
देने को स्थिति में नहीं रहा,
उन्हीं माता-पिता को
आज शब्दों का
यह समूह...

आमुख

एक हकीक़त

व्यर्थ हैं,
कोरी बकवास।
ये और कुछ भी हो सकती हैं
मगर कविताएं कदापि नही।

मैं जानता हूं
क्योंकि मैं भी तुम्ही में से एक हूं।
सो मैं जानता हूं
कि ये तुम्हारे सर पर चढकर नही बोलती,
तुम उन पर सवार होते हो,
घुड़सवारी करते हो,
जब कि जिन्दगी में एक फ़र्लांग भी
तुम दौड़कर नहीं गए।

मैं कब इन्कार करता हू
कि तुम्हारे पास शब्द नही?
शब्द ही शब्द तो हैं!
शब्दों का जंगल जिसमें घुसकर
तुम निकल ही नही पाते।
पहले शब्द कविता कहते थे
अब कविता कोरे शब्द कहती है।
इन शब्दो में क्या नही होता?
संघर्ष, विस्फोट, क्रांति—
सभी कुछ तो...

कविता उस अधेड़ औरत की तरह है
जो कैसे भी,
कितने ही कीमती परिधान पहन ले
बिलकुल इश्तहार दिखती है।
न रूपा है,
न धूपा है,
कविता सर्द रात का अँधेरा है,
या किसी कोढ़िन का घिसता हुआ अँगूठा है
आज, हाँ आज—
तुम्हारे और मेरे हाथों में।

मैंने प्रयोग किए—
कविता नहीं लिखी;
मैंने उसे बौद्धिकता दी
कविता नहीं लिखी;
मैंने उसे नंगा कर दिया
कविता नहीं लिखी।
क्यों नहीं लिखी यह
जब मैं ऐसा चाहता था,
जब मैं बहुत पहले लिख चुका था ?

मैं कविता में विद्रोह भरता रहा
और खुद डरता रहा,
बेतरतीब ईमानदारी की पताका हाथ में लिए
शब्दों का व्यापार करता रहा।
जो कुछ भी जीवन में घटित नहीं हुआ
वह सब आसानी से कविता में हो गया।

मैं कायर था
मगर मेरी कविता में साहस था;
मैं समझौतावादी था
मगर मेरी कविता सरकश थी,
मैं अपने पड़ोस से अपरिचित था
मगर मेरी कविता समूचा विश्व घूम आती थी;

मैं टहलुआ था
मगर मेरी कविता आज़ाद थी।
मेरी कितनी असगतियों को ओढ़-ढो रही है कविता
यह कविता नहीं
मेरे पगु विचारों की दम तोड़ती बैसाखी है
जिसे मैं अपनी कांख में दबाये घूम रहा हूं।

और वे बम्बई और दिल्ली मे बैठे
आकर्षक औरतों की फोटुएं छाप रहे हैं
और मौसम तथा प्यार की यौनोत्तेजक
कविताए मांग रहे हैं,
मुझ जैसों को अस्वीकार-दुत्कार रहे हैं।
उन्होंने मर्म जाना है,
बाज़ार को पहचाना है।

ज़िन्दगी की सलेट सूनी है,
अंधेरा फाड़ रहा है
सुरसा-सा अपना मुंह
और मैं कविता लिख रहा हूं इतमीनान से,
हज़ार सूरज मेरे द्वार पर खड़े हैं...

अब हकीक़त
आप ही पहचानिये...

पुरानी गिनानी,
बीकानेर (राजस्थान)

—योगेन्द्र किसलय

क्रम

कोशिशें
कायम
हैं

फ़ासले क़ायम हैं

मुझे फ़ासला नापने के लिए
छोड़ गये वे।
मैं परेशान हूं,
व्यग्र, व्यथित—
मैंने इस काम को बहुत ही आसान समझा था।

मगर हर पगडंडी
बड़े मार्ग से कटी हुई थी
और हर बड़ा मार्ग दिशाहीन था,
मैं जिससे भी मिला
वह दूसरे से दूर था—
बस मकान आस-पास में सटे हुए थे।

मुझे जानबूझ कर यह काम सौंपा उन्होंने
ताकि इसी में उलझा रहूं मैं
और वे औरतों को चाटते रहें,
खाते रहें भूना हुआ मुर्गा।
मुझे काफ़ी बाद मालूम पड़ा
फ़ासले तो वे ही
दूर-दर-दूर करते गये थे।
यह उनकी चाल थी
कि लोग आपस में मिलकर
उन्हें परेशान न करें।
अतः दोस्तो !
फ़ासले क़ायम हैं।

भूख लगेगी ·····
तुम कितने उदार हो,
कितना कुछ मुक्त भाव से देते हो !
हमारी औरतें, बच्चे अन्दर ही अन्दर तुम्हें चाहते हैं।
तुम्हारे साफ़ कपड़े
और चमकते चेहरे उन्हें रिझा लेते हैं।

मगर तुम अकाल के साये में ही क्यों आते हो ?
भयंकर अकाल पहले भी पड़ते थे
और हम उनकी मार सह लेते थे
हज़ारों बरस हो गए
लेकिन हमें अपनी मिट्टी से हमेशा बेहिसाब प्यार रहा,
क्योंकि इस मिट्टी को हमसे अधिक
और कोई नहीं पहचानता था—
अब लगता है
ये सारे के सारे गांव
उस झील की तरफ़ भागना चाहते हैं
जहां तुम्हारा शहर बसा है।
हमारे गांव से कुछ छोकरे भाग गए थे
वे वापस नहीं लौटे
तुमने उन्हें कारखानों में नौकरियां दे दीं।
पहले ऐसा कभी नहीं हुआ !
हवा जब-तब उड़ा लाती है कागज़ों के टुकड़े,
कुछ बिल्ले और इश्तिहार
जिन्हें देखते, पढ़ते-से रहते हैं हम,
और हमारे अंगूठे विफर पड़ते हैं दस्तखतों के लिए।
ठीक है
यह अकाल भी हमारे लिए शुभ है
क्योंकि हम थोड़ा और बदलेंगे,
स्वभाव से, जिन्स से।

मगर·····मगर ऐसा क्यों नहीं होता
कि यह अकाल या तो सदा के लिए उठ जाये
या फिर कभी ख़त्म हो न हो

ताकि हम अपने साथ-साथ
तुम्हें भी सम्पूर्ण पहचान लें,
तन कर खड़े हो जायें
या झुक कर समर्पित।

रहस्यमयी महल के निर्माता

हम जो बिके, बिकते ही चले गए।
विदेशी हाथों मे स्वत्व शेष था
उमंग थी लड़ने, मरने, कुछ कर गुजरने की
उस पन्द्रह अगस्त की वांछित सुबह के बाद
आज तक दोपहर है। धूप ! चिलचिलाती धूप !
फिर न वो सुबह आयी, न वो शाम !

तब से आज तक एक महल के निर्माण में
लगे हैं मजदूर
न जाने कब पूरा होगा
नये राजाओ का यह जड़ाऊ महल ?
अब मालूम हो गया है हमे
कि कुछ लोग कभी गुलाम नही होते
और कुछ कभी आजाद नही होते।
भारी पत्थरों को ढोते-ढोते
टूट गए हैं हजारों हाथ
उखड़ कर गिर पड़े हैं कन्धो से।
जवान औरतें जिन्हे गांव में छोड आये थे
उन्हे मिरगी के दौरे पड़े। बूढी हो गयीं वे।
बिटियाओ के खत आते हैं : "दादा, एक बार हो जाओ।"
मगर कैसे ?
निर्माण जो जारी है,
अभी तक महल के पाये ही उठे हैं।
शहर की सड़कों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगे हैं :
"दुश्मन की चाल है यह। बहकाने में मत आना।"

कैसी बेगार ?
अपना ही तो प्रासाद बन रहा है यह !

ताकि हम अपने साथ-साथ
तुम्हें भी सम्पूर्ण पहचान लें,
तन कर खड़े हो जायें
या झुक कर समर्पित।

रहस्यमयी महल के निर्माता

हम जो बिके, बिकते ही चले गए।
विदेशी हाथों में स्वत्व शेष था
उमंग थी लड़ने, मरने, कुछ कर गुजरने की
उस पन्द्रह अगस्त की वांछित सुबह के बाद
आज तक दोपहर है। धूप ! चिलचिलाती धूप ! '
फिर न वो सुबह आयी, न वो शाम !

तब से आज तक एक महल के निर्माण में
लगे हैं मजदूर
न जाने कब पूरा होगा
नये राजाओं का यह जड़ाऊ महल ?
अब मालूम हो गया है हमें
कि कुछ लोग कभी गुलाम नहीं होते
और कुछ कभी आजाद नहीं होते।
भारी पत्थरों को ढोते-ढोते
टूट गए हैं हजारों हाथ
उखड़ कर गिर पड़े हैं कन्धों से।
जवान औरतें जिन्हें गाव में छोड़ आये थे
उन्हे मिरगी के दौरे पड़े। बूढ़ी हो गयी वे।
बिटियाओं के खत आते हैं : "दादा, एक बार हो जाओ।"
मगर कैसे ?
निर्माण जो जारी है,
अभी तक महल के पाये ही उठे हैं।
शहर की सडकों पर बडे-बडे पोस्टर लगे हैं ·
"दुश्मन की चाल है यह। बहकाने में मत आना।"

कैसी बेगार ?
अपना ही तो प्रासाद बन रहा है, यह !

सकल्प था यह
या कि एक कागज़ पर हस्ताक्षर कर दिए थे हमने
कि जब तक काम पूरा नही होगा
हम लौटेंगे नही।
हाय ! हमे लोभ था
कि हम शहर की तिजोरियां अपनी ढाणियो मे ले आयेंगे।
वो बैल मर गया,
वो गाय मर गयी,
वो बछडा मर गया,
चूल्हे की नजर हो गया धरती को तृप्त करने वाला हल,
बोरसी मे जल गया समूची झोपडी का फूस,
ढह गये कच्चे घर।
बच्चे घूरो पर बैठे आती-जाती जीपें देखते हैं
उनके ताऊ, दादा, चाचा
जब लौट कर आयेंगे उन्हे घर ले जायेंगे
अपनी गोदियो मे उठाकर।
तब रात भर सुनायेंगे वे राजधानी के किस्से,
उस महल के किस्से
जिसे बनाने के लिए वे स्वेच्छा से गए थे।
अपनी चुकी हुई औरतों को देखकर
उनकी आंखें न उठेंगी, न गिरेंगी।
वे किस-किस से झगडेंगे ?
परधान से, लाला से,
सरपच के छोकरो से,
बोहरे से जो ब्याज के बदले
उनकी लडकियो को शहर मे छोड आया।
मा जब मरी थी
उसकी जीभ पर बस एक नाम था : 'मेरे बेटे।'
बाप की आखें मरघट तक खुली थी···

यह हुआ
जैसे बादशाहो ने जजिया वसूल किया हो
या मराठो ने चौथ,
हमारे माथे की सूर्य-सी चमक चली गयी,

अस्तित्व की लोगों ने किस चालाकी से नसबन्दी कर दी !
अब हम वही करते हैं जैसा वे चाहते हैं
मसलन वोट, नारे और यदाकदा उपद्रव
अभी हमें बहुत काम करना है
सुरगों से जोड़ना है महल को देश के गांवों से
इतना अद्भुत और रहस्यात्मक होगा यह महल
कि हम स्वयं भूल जायेंगे कि
इसका निर्माण हमने किया था !
हम अपने घरों को नहीं लौट सकते
तुम चाहो तो हमें यहां आकर देख जाओ छुप कर
सख़्त पहरे में काम करते हैं हम
उस लुभावनी सुबह को बिक गए थे हम
इस चिलचिलाती धूप के लिए !
अब वे जैसा भी कहें तुम स्वीकारते रहो
और उम्मीद, केवल उम्मीद के सहारे
काटते रहो अपनी शेष ज़िन्दगी —
ज़िन्दगी जो अपने सभी अर्थ खो चुकी है।

इन्हें काटो

इन हरे-भरे पेड़ो वाले जगलो को रहने दो,
आरे,
कुल्हाड़े,
और चूल्हे की आग से दूर रखो इन्हे !

पेड किसी की हत्या नही करते,
न ही किसी के गद्दीनशीन होने पर
ये वजाते हैं तालिया।
यह बात अलग है
कि हम इनके जिस्म का
तख्ता बनाते हैं —
तख्ता जो पलटता रहता है
और जिस पर हम अक्सर
किसी मूर्ख को बिठाते हैं।
मैं यह घोषणा अटूट विश्वास के
साथ कर सकता हू
कि तख्तो की साज़िश मे पेडों का कोई नाटक नही।

रहने दो, रहने दो !
अपने नादिरी हाथो से इन पेड़ों को मत छुओ —
तुम जिसे भी छूते हो
वह जल-मुरझा जाता है।
और यदि काटने ही है
तो क्रूर आदमियो के ये जो बीहड हैं
जिनमे खौफनाक नरभक्षी रहते हैं—
इन्हे काटो,
ताकि बच्चो को चलने के लिए
पगडडी तो मिले— एक छोटी-सी साफ पगडडी।

ख्वाहिश

मेरे सर पर
कुछ तो होना ही चाहिए —
मोर की कलगी,
यशस्वी का मुकुट
अथवा नेता की टोपी।

मोर की कलगी हुई
तो मैं आत्म-रति मे जी लूगा
भले ही मेरी सहचरी कितनी ही कुरूप क्यों न हो।
वह मेरे ईर्द-गिर्द घूमेगी,
मुझे गर्व होगा।
जाने कितनी घरवालिया
मुझ पर रीझेंगी,
ललकेंगी,
खोयेंगी, चरित्र और......!

यशस्वी का मुकुट हुआ
तो मैं पूरा नगर जला दूगा,
गर्भिणी रानी को लात मारूंगा
और बारादरी में बैठ
धधकती आग को
बांसुरी के शहद-सुरों से बुझाऊगा।
इतिहास में अंकित हो जायेगा
तब मेरा भी नाम।

नेता की टोपी हुई
तो मैं इस एक जन्म मे
जी लूगा दस जन्म,

गली को गोला-बारूद कर दूंगा,
रोशनी को अन्धा
ताकि वह मुभी से लिपटी-चिपटी रहे
और चुंधियायी नस्ल जब मेरे निकट आये
तो भूल जाये अपनी व्यथा,
फडफड़ाती नजरों से देख
उसी तरह चली जायें
जैसे आरती, कीर्तन के बाद
भक्तों की टोलियां।

कलगी,
मुकुट,
टोपी !
इनमे से कोई एक तो मिले मुझ को !
सच कहता हू
ताउम्र कोई शिकायत नही करूगा।

अपनी तलाश

मैं तुम्हें क्या ढूंढूंगा ?
मैं खुद खोया हुआ व्यक्ति हूं,
दिन-रात अपनी ही तलाश में व्यस्त।

नहीं...नही
विश्वास मत कर लेना कही
मैंने कोई वायदा नही किया है
सिवाय इसके कि
नई पुस्तक का आवरण पृष्ठ
मैं ही बनूंगा
मगर कथ्य मे कही नही रहूंगा
और लाल अक्षरों मे
कही भी मेरा खून नही होगा।

प्रश्न अपनी सुरक्षा का नहीं है
प्रश्न तो यह है कि
मेरे आदमी को क्या हुआ है ?
तुम खाई में गिरे हो
तो मैं कौन सड़क पर चल रहा हू ?
मैं तो इतना भी नही जानता
मैं कहां गिरा हूं ?
पहले मुझे अपनी तलाश करने दो।

बाप और बेटे

क्या कहा ?
सन सैंतालीस के बाद
सब बाप ही बाप पैदा हुए।
कोई बेटा पैदा नही हुआ !
और क्या ?
बेटा तो वह जो बाप के पैर दबाता है।
सरवन कुमार।
जो सेवा करता है।
आज़ादी के बाद
बेटो ने मिलें खोल ली
और बापों को रख लिया उनमे मज़दूर
जो सायरन की चीख के साथ-साथ
कापते रहे।
बेटो ने रख ली बाप की टोपी
अपने सर पर।
यानी कर ली अपनी ताजपोशी।
अलमारियो मे पोशाकें ही पोशाकें।
तिजोरियो मे अतुल सम्पत्ति।
रनिवास मे अनगिनत बेगमे, रखैलें।
बाप बूढ़ा, हारा-थका दरबान।
बहिनें परमिटो का सौदा करने
गयी हैं
ज़ाहिर है वे घर पर नही हैं।
बीवियां मोटी हो गयी हैं
और सिफान की साड़ी के घेरे मे
लिपटी बैठी, लेटी हैं।
पान चबा रही हैं,
या स्कॉच पी रही हैं

और खिखियाये जा रही हैं।

परदों के बाहर
पेड़ खड़े हैं
सूखे, ठूंठदार।
आजकल पेड़ पनपते ही नही।
बस्तियो मे अंधेरा है।
चुनाव होंगे अभी।
देखें बाप हारता है या बेटा जीतता है।
बीवी जीतती है या फिर बेटी।
समर्पण किसको किसका ?
रिश्ते किस बात के ?
एक था भीष्म
जिसने बाप का सुख रख लिया।
चले गए राम जंगलो में।
अब तो भुने हुए पापड़ हैं रिश्ते
या तली हुई मूंगफलियां।
तोड़ने, लीलने, लपकने को उठते हैं हाथ।
बूढ़े खांसते रहते हैं सहन मे।
गदे बिस्तरे को साफ करता है पहाडी नौकर।
कोसता भी है।
मामूली वेतन मे कोसना ही तो
मुआवज़ा है उसका।
पीपल पर कोई पानी नही चढ़ाता।
गाव के छोकरे खेलते हैं
शीतला मैया के देवों से
और दे मारते हैं झुकी कमर वाले
रणवीर की पीठ मे ईंट।
मास्टर डरते हैं।
उनके पास कोकर की बेंत भी नही है अब।
फिर भी पहाड़े सबको याद हैं।
हिसाब सबका अच्छा है।
सम्पूरन की सीढ़िया
न जाने कितनो को उतारती है !

'तुम्हे बाप की जरूरत नही।...
तुम केवल मां के पेट से पैदा हो सकते हो।
पेटीकोट, घाघरे के नीचे।
चिकनी जाघों को छूकर,
तुम्हे...तुम्हे...तुम्हे
मैंने पैदा नही किया था।'

सलाह

जाओ, चुपचाप
अपने दर्द को धो आओ,
तौलिये से रगड़ कर पोंछ लो माथा।
सन्देह की एक भी शिकन बाकी न रहे
साथी हँसेंगे वरना,
दुश्मनों को खुशी होगी।
अभी बैठक में दिखावटी आयेंगे,
तुम उनसे खूब बातें करना
हँसना चाय के हर घूंट पर।
तुम्हें सामान्य पा उन्हें अफ़सोस होगा।
वैसे मैं जानता हूं तुम्हारा अन्तर्दाह
मगर तुम भी तो कुछ
नक़ली मात देना सीखो—
वरना वे तुम्हें साबुत निगल जायेंगे।

ज्ञानोदय

अब मैं जान गया हूं
नीत्शे को पढ़ने के बाद
दोस्त का अर्थ ।
चूंकि मैंने किसी दोस्त में
दुश्मन नही देखा
अतः न पहले मेरा कोई मित्र था,
और न अब है ।
मैं अहसासने लगा हूं कि
मित्र का अर्थ
बैसाखियों पर चलना है,
और दुश्मन का अर्थ
सतर्क रहना है ।
सतर्क मैं कभी नही रहा
पर अब इन बैसाखियो को
कहा फेंकू…कहा फेंकू…?

पैदल

सूर्यरथ पर
तुम पहुचो
मैं पैदल ही आ जाऊगा;
और यदि कही
टूट गया तुम्हारा पहिया
तो मैं तुम्हे
मारग मैं ही पा जाऊगा ।

कैदी गांव

हरियल सीता-राम
पिंजरे की सलाखों पर चोंच मारता रहा,
उसकी कटोरी में पानी डाला
खाने को चने दिये।

टीकुल गाय
खूंटे पर बँधी जोर से रँभायी
उसे रिजुका मिला भुस डाला
कुछ सानी दी।

बीमारी में जकड़े ताऊ
झूलनुमा खटिया पर से खांसे
(अब यही उनकी आवाज है)
उन्हें भागकर टिकिया दी
यूं ही थोडी पीठ सहलायी।

कचहरी के नागपास में बँधे
अपने दोस्त सुक्खा को
कागज समझाये, हिदायतें दी --
ये मानेगा नही
जमीन बेच-बेच कर लडेगा
और आखीर में पूरा लगडा हो जायेगा।

बन्तो बाल फैलाये
सरपंच की देहरी पर रोयी, बकी-झकी—
"मो या कसइय्या सूँ बचाओ"
वह थोडी देर में चली गयी
और फिर घर की खुंटिया से जाकर बँध गयी।

पोखर के चारों ओर पेड़ खड़े हैं –
पोखर उतना ही है जितना सालों पहले था
कभी घट जाता है, कभी भर जाता है
बस जैसे गांव में कोई जन्म लेता है,
कोई मर जाता है।

सम्पूरन ने घोड़ी की पीठ पर जीन कसी है
नम्बरदार अभी घूमने जायेंगे
ओर-पास की टोह लेकर लौट आयेंगे
घोड़ी फिर लड़ामनी पर बंध जायेगी
और घास के लिए थोड़ा हिनहिनायेगी।

आशय

पहली बार जब वह आया
मैं अपने उसी कार्य मे व्यस्त था
उसके टोकने पर भी मैं चुप रहा।
दूसरी बार वह फिर दाखिल हुआ
"अरे, फिर वही ! गांठें खोलते रहना भी कोई काम है?"

मैं फिर चुप रहा
उसकी ओर देखे बिना खोलता रहा गाठें।

तीसरी बार जैसे ही मैंने उसकी आहट सुनी
मैं लपक कर उसकी ओर बढा
और उसकी आखो के आगे कर दिया वह कागज
जिस पर मैंने लिख रखा था·
"तुम सुलझे हुए व्यक्ति हो।
मैं जब तक कुछ और गाठें खोलू
तुम तब तक मेरी समझदार बच्ची से बातें करो।"

अफसोस !
वह मेरा आशय फिर नही समझा
खरखरी हँसी के साथ बोला :
"कैसी मजाक करते हैं जी, आप !"

आवाज़

भाई ! कुछ रास्ता मुझे भी दो
तुम तो पूरा मार्ग ही रोके खड़े हो !
मुझे भी घर जाना है,
कुछ काम करने हैं।

ट्रैफिक वाले सिपाही से मैं क्या कहूं ?
वह तो तुम्हारा ही रोपा हुआ स्तम्भ है
जो गिरेगा भी तो मुझ जैसे
पैदल अथवा साइकिल सवारों पर।

भाई ! बस थोड़ा-सा हट जाओ
गुजरने भर की जगह दो
ताकि मुझे आदमी होने में
शर्म महसूस न हो,
कि मुझसे तो तीखे सींगोंवाला
यह सांड ही अच्छा
जो बिना अनुनय-विनय के
अपना रास्ता बना लेता है
और भूख लगने पर
झपट कर खा लेता है
दूकान, ठेलों से
कभी कुछ फल, कभी कुछ तरकारी।

भाई ! क्या तुम आदमी की आवाज
बिलकुल नहीं समझते ?
तो फिर हटते क्यों नहीं हो ?
क्यों अड़े-जमे खड़े हो ?
क्या तुम चाहते हो

मैं भी एक जानवर बन जाऊं,
तुम्हे सींगो से ठेलूं, भगाऊ ?

भाई ! ऐसा मत करो
मुझे भी घर जाना है,
कुछ काम करने हैं।

प्रताड़ित

दो जून खाने का प्रबन्ध
मेरी लेखनी के पास अब शब्द नहीं रहे।
पत्रिकाओं का कलेवर घट गया,
पन्ने कम हो गए,
क़ीमतें मगर बढ़ा दी गयी—
पारिश्रमिक वही
जो आज से बीस वर्ष पहले था।

लेखक साला फिर भी लिखता है
गिड़गिड़ाता है
छपने के लिए।
लेखकों का, सृजनकारों का कोई मंत्री नहीं!
ठीक भी है उन्हें विपन्नता में रखना
ताकि उनके फफोले फूटें
और वे रचना करें—
वर्तमान में मरें
और भविष्य में जियें।
मेरी सारी हिम्मत
राशन की लम्बी कतार ने छीन ली है
मैंने किसी जिलाधीश,
किसी एस० पी०, किसी डी० एस० ओ०
को आज तक राशन की दुकान पर
घिसे-पिटे लोगों की पंक्ति में खड़ा नहीं देखा।

यह कैसी एकतंत्रीय व्यवस्था है।
अब किसी कम तोलने वाले के हाथ नहीं कटते
कभी कभार महज दिखाने के लिए
पकड़ लिया जाता है कोई मिलावटी

और पूरे सप्ताह आकाशवाणी को
मिल जाता है एक कथ्य।

मैंने एक सपना देखा था ·
एक नेता और एक सेठ
मेरी रीढ़ की हड्डी को काट चूस रहे थे
मैंने कहा :
यह क्या किया तुमने
अब मैं लिखूगा कैसे ?
उत्तर मिला :
'चुप रह कमजात।
स्वाद छीनता है
समझता है तेरे लिखने से
देश चलता है।'
और वे चूसते रहे हड्डी
और तब से मैं उनके कथन की सच्चाई से
प्रताडित हू।
सोचता हू और दु खी होता हूं
क्यो बने थे राधाकृष्णन राष्ट्रपति
उदाहरण दिये जाने
और हमेशा के लिए हमारा मुह बन्द रखने के लिए ?

अह एक अह. .एक अह
वस्तुस्थिति एक वस्तुस्थिति...एक वस्तुस्थिति
शोक एक शोक एक शोक
जिन्दगी को नए अर्थ नही दे सकता
अब मैं,
अब मै खुद अपना शत्रु हो गया हू,
सूखी हुई लेखनी की नोक को
मैं कठ के पास ले आया हू
ठिठक गया हू—
ससद से शायद कोई बिल पास हो जाये।
कि लोग लेखको की हड्डियो को
आइन्दा न चूसें।

नियति

हमसे कहा गया —
सपने मत देखो,
यह कायरों का काम है।
हमने उनकी बात मान ली
वरना हम समाप्त कर दिये जाते;

हमसे कहा गया —
बाहर से सम्पर्क मत जोड़ो
केवल अपनी चारदीवारी में रहो।
हम ऐसा क्यों करने लगे ?
हमें अपनी पत्नी, बच्चे याद आ गए।

हमसे कहा गया —
वही लिखो जैसा सत्ता चाहती है
अन्यथा विद्रोह होगा।
हमने बुझे दिलो से
यह आदेश भी स्वीकार किया
हम देश से निष्कासित नही होना चाहते थे
हमें अपनी गलियों से बेहद प्यार था।

मगर अब वे
लोहे की टोपियां पहने
हाथो मे तीखी बरछियां लिए
बैठे हैं मेज़ो पर
उनकी नजरें हमारी किताबो पर हैं
और वे उतार रहे हैं
इधर-उधर से कुछ वाक्य।
उन्हें कुछ शब्दो मे,

कुछ वाक्यों मे देशद्रोह की बू आ गयी है—

वे अब हमें
हमारी प्रिय गलियों से बाहर फेंक आयेंगे।
हम बरछी के लिए तैयार थे
किन्तु इस जीवित मृत्यु के लिए नही !
हमने क्यो सोचा ?
क्यो लिखा ?
वे तो बार-बार कहते थे
खेती करो,
मजदूरी करो।

पार्थ

मैं तुम्हारे पास अवश्य आता
यदि तुम जाग रहे होते
और गीता तुम्हारे लिए मात्र एक पुस्तक नही होती।

तुम और तुम जैसे
मेरे पार्थ नहीं हैं,
तुम्हारे समीप होते हुए भी
मैं तुमसे बहुत दूर हूं।
तुम स्वय को ही नहीं पहचानते
औरों को क्या जानोगे ?
न तुम योगी हो, न कर्मी
न तुम्हारे हाथ में कोई शस्त्र है,
न मन मे कोई दूरगामी संकल्प,
न तुम आड़े वक्त धनुष्य की प्रत्यंचा खीच सकते हो,
और न ही पुलक क्षणों में कोई रास ही रच सकते हो।
तुममे न युद्ध होता है, न प्यार
तुम न सद्गृहस्थ हो, न मर्मज्ञ ज्ञानी-ध्यानी।

तुम विरक्त कर्मशील होते
जूझते, कष्ट पाते
तो मैं तुम्हे संभालता।
तुम तो सदियो से माथा झुकाये बैठे हो,
पूरे जगत से तुम्हे शिकायत है
और जब-तब हथियार उठाने की बात आती है
तुम रणक्षेत्र से भाग जाते हो,
तुम सोच रहे होते हो कि बच गए
मगर वास्तव मे उसी क्षण, हां उसी क्षण मर जाते हो।
तुम मनुष्य भेष मे एक छद्म हो,

तुम काल का एक ग्रास हो बस।
तुमसे नयी भोर की अपेक्षा व्यर्थ है,
जीवन-बोध ही नही है जब
तो रंग-बोध क्या होगा तुम्हारे पास ?

मुझे मालूम था कि पार्थ विचलित होकर
अपना गांडीव रख देगा।
तभी तो मै सारथी बना था
क्योकि पार्थ का मोह भंग आवश्यक था।
मैं जानता था कि कौन्तेय कायर नही है,
वह लड़ेगा और नष्ट करेगा उन शक्तियो को
जो इन्सानियत के साथ जुआ खेलती हैं,
पांचालियो को विवस्त्र करती हैं,
दूसरो के निवाले झपटती हैं,
समस्त भूमि पर अपने ही प्रासाद निर्मित करती हैं,
और पथ-भ्रष्ट होने के बाद भी शासन करती हैं।

उनके खिलाफ लडना ही था,
लडना ही है।
पार्थ यह समझ गया था,
और तभी से वह एक प्रतीक बन गया है
अत्याचार के विरुद्ध कर्मठ विरोध का।

तुम शयन-कक्ष मे
बिस्तर पर पडी एक प्रस्तर मूर्ति हो।
पत्थरो को सदा फेंका जाता है,
दीवारो मे चिना जाता है,
अथवा उन्हे बारीक कूटा जाता है।
तुमसे तो गलियो का वह स्वान अच्छा है
जो भौंकता है,
रात मे चोर की टाग मे अपने कीले गाड देता है।

मैं आऊगा और तुम्हे मार्ग दिखाऊगा,
जब तुम्हारी धमनियो मे लहू बहेगा,

जब तुम्हारे मस्तिष्क में विवेक होगा,
और जब तुम्हारे अन्दर एक साहसी योद्धा का अपरिमेय बल होगा।

अभी तो तुम कर्मविहीन, निरर्थक जिन्दगी जिओ,
केवल उपालम्भ दो, शिकायतें करो,
बन्द कक्षों में खुले आसमान की कल्पना करो।
जिस दिन जीवन के रणागंन में
संशय और कायरता का पल्ला छोड़
शौर्य और निश्चितता के साथ आकर खड़े हो जाओगे
तब मैं तुम्हारे कंधे पर अपना हाथ रखूंगा
और कहूंगा —
"तुम्हीं तो मेरे पार्थ हो।"

मैं टूटता रहता हूं

कही कुछ टूटना
कही कुछ गढना बन जाता है
यानी बिना टूटे गढना होता ही नही।
बिखराव के बाद साज-सवार
बेतरतीबी के बाद क्रम।
क्या इसलिए तोडता रहता हू स्वय को
जब जी चाहे, हर समय ?
क्या इसीलिए उखाडता-उजाड़ता हू
अपना चेहरा,
अपना जिस्म,
अपना मन
कि बाद उसके आइने के सामने जाऊ ?
यह सच है शायद
इसीलिए .इसीलिए
छेनिया चलती हैं,
प्रहार क्षत-विक्षत करते हैं,
हल का चिकना-चमक-लोह-फाल
चीरता चलता है धरती का जिस्म;
और तो और शब्दो पर निरन्तर
डोलते रहते हैं
विचारों के भरकम पैने यंत्र, औजार
फिर अस्त-व्यस्त हो जाता है सब
चक्रवाह मे फँस जाता है लघु-जीव .
पर उसी के साथ धीरे-धीरे
हाथो पर आता है मेहदी का रग,
उग आते हैं कोमलता से भी कोमल पौधे,
रच जाती है एक सृष्टि,
खंड-खंड की जगह कण-कण समाविष्ट रचना।

ओह !
वह रचना जो सब-कुछ तोड़-झझोड़ कर निकलती है।

मैं टूटता रहता हू
बेहतर गढ़ाव के लिए,
मैं बिखरता रहता हूं
और भी जड़ाव के लिए।

इतिहास सन्दर्भित कुछ प्रश्न

मैं चाहता तो था
कि गधारी की आखो पर बधी पट्टी
झपट, उतार फेंकू
और उसे द्रोपदी की मासल, चिकनी
जघाए दिखा दू,
दिखा दू उसका विवश, भयाक्रात अस्तित्व।

मैं चाहता तो था कि
युधिष्ठर को ला पटकू
कर्ण के चरणों में
और बता दू कि जिसकी तुम मौत चाहते हो
वह तुम्हें जीवन दान दे चुका है।

मैं चाहता तो था
कि सर्वशक्तिमान प्रभु समझे जाने वाले
नाटकीय कृष्ण से पूछू—
यह कैसा दिशा दर्शन कि
तुमने देश को हजारों वर्षों के लिए पगु कर दिया,
धरती को बजर
और शौर्यहीन ?

मैं चाहता तो था
कि द्रोण के कटे मस्तिष्क से पूछू—
वह कौन-सा गुरुतुल्य न्याय था
जिससे कि ग़रीब,
सर्वहारा एकलव्य का अगूठा
कटवा लिया था तुमने ?

मैं चाहता तो था
कि गांडीवधारी अर्जुन से पूछूं —
वह कैसा शौर्य, कैसी रणनीति थी
कि तुम शिखंडी की आड़ में
चलाते रहे तीक्ष्ण बाण;
और निहत्थे शत्रु कर्ण पर
वो तुम्हारा घातक प्रहार
तुम्हारी आत्मा की कौन-सी आवाज से परिचालित था?

मैं चाहता तो था
कि गुरु पुत्र अश्वत्थामा से पूछू
द्रौपदी के सुकोमल, अबोध पुत्रों की हत्या
किस उपलब्धि की प्रतीक थी?

मैं चाहता तो था
कि समस्त महाभारत की
विशद शल्य चिकित्सा हो
मगर मैं बीसवीं सदी के महाविश्व से
विचलित हो,
एक ओर चुप बैठ गया हू।
मुझे क्या अधिकार है
कि मैं जगह-जगह विसंगतियां
ढूढ़ता फिरू
जब वैसे ही घिनौने अप्रशस्त कृत्य
मैंने अपनी पूरी विवेकावस्था मे किए है?
क्या मैं इतिहास प्रिय हू
अथवा लड़ामनी में पड़ा हुआ
चिड़चिड़ा,
बावर कुत्ता?

मेरे प्रश्न

अब मैं किन संदर्भों से जुड़ूं ?
कौनसी नयी दासता स्वीकारूं ?
किसकी चौखट पर यह लघु-शीप रखूं ?
और किसकी आंखों मे स्नेह के लिए झांकूं ?
सब कुछ बदल क्यों जाता है ?
क्यों हो जाते हैं कल के चौड़े रास्ते
कुछ ही समय मे भयावह और तंग ?
क्यों लोग फूलों को फेंककर बन्दूक उठा लेते हैं हाथों मे,
देने लगते है अकारण गालियां,
फेंकने लगते है धूल, घृणा और अपना प्रभुत्व ?

मैं नहीं मान सकता कि
आसमान ने हमेशा रहमत बरसायी है
और चैन से जिया हूं मैं
जबकि हवाओं मे थोड़ा-सा ज़हर तो मैंने भी घोला था !
अब पराकाष्ठा कि
बच्चों के मुंह मे भी पड़ी हैं ज़हर की कोथली
और हर बात मे ढह जाता है
कोई अपने में से ही।

क्या मैं ज़हर के इस आलम से
साठ-गांठ रखूं,
और अपनी अहमियत को किसी सड़ी पोखर में फेंक
उनकी क़दमबोसी करूं
गिड़गिड़ाऊं अपनी निरीहता का हवाला दे ?
पता नहीं तुम कल अथवा परसों कैसा दर्शन सीखोगे,
कौन-सा पथ अपनाओगे !!
मगर एक बात निश्चित है

बिना [illegible] के
धरा रह [illegible],
साफ़ [illegible]
और तुम [illegible] नाटक।

मैं कहे क्यों जाता नहीं हूँ
कोई देता मुझे क्यों दंड?
जो पीछे छूट चुका है वह औरों का है
जो आगत है वह भी औरों का—
मगर महामन्दिर के प्रांगण में
हैं कुछ मुझ जैसे भी
जिन्हें कभी देवता नज़र नहीं आता
और दूसरों के देखने से आश्वस्त होता
अंधविश्वास को ढोते रखना
मुझे स्वीकार्य नहीं था।

हँस मैं भी सकता था
मगर मैं चालाक तो हुआ होता!
मैंने जो प्रश्न पूछे हैं
दरअसल उनके उत्तर मैं जानता हूँ,
ये आपके सिर हैं
और न भी हों!

निरुपाय

गरजा है,
इन्कार किया है बार-बार,
ठेला है तट की ओर......
मगर मानें तो बौरायी नदियां !!
सभी लवण हो जायेंगी,
सागर के वुजूद मे खो जायेंगी।

सीमान्तर

वे घर जो नंगे हैं
यानी जहां कमरों में पेलमेट्स,
जड़ाऊ सोफ़े,
और रंगीन परदे नहीं—
तुम्हारी समझ में वहां पशु रहते हैं
असभ्य,
गुफा-मानव,
वे झोंपे
जिनमें झुक कर प्रवेश किया जाता है
जहां बीच के लट्ठे पर
लटकी हुई होती है समूची गृहस्थी
जहां लचके घुने हुए शहतीर,
बस कपाल पर गिरा ही चाहते हैं—

तुम्हारी समझ में वहां सजायाफ्ता
चोर, डाकू, खूनी और देशद्रोही रहते हैं
निष्कासित,
शापित जन,
तुम्हारी ऊंची टेकरी पर बने भव्य आवास से
मेरे गांव की जो टिमटिमाती बत्तियां हैं
वे सब इज्जत गंवायी
जवान लड़कियों और बहुओं की पनीली आंखें नज़र आती हैं
जो तुम्हारी तरफ़ उठती नहीं
और तुम उन्हें देखना तक नहीं चाहते।
मैं आज तक सोचता रहा हूं
कि नंगे घरों और अंधियायी झोंपड़ियों को
हिक़ारत की नज़र से देखकर
क्या सुख मिलता होगा तुम्हें ?

मैं समझाना चाहता हूं
कि कभी लूट से भरे गजनी के भंडार
अब रिक्त हो गए हैं
कि राजाओं के रत्न-जडित तख्त
अब बाजारों में बिकने लगे हैं—
फिर तुम और तुम्हारा भिन्न
अदम्य,
और समर्थ होने का गर्व
क्या है
सिवाय एक समय-अज्ञानी मूर्ख के ?
तुम्हें मालूम है कि नहीं
जब पहाड़ी पर बने ऊंचे प्रासाद से
कभी तुम्हारा पांव फिसलेगा
तो तुम सीधे
मेरे गांव की तराई में आकर गिरोगे
और तब तुम्हें संभालेंगी
वही सन्तप्त औरतें
जिनकी देहों में तुमने दांत गाड़े थे
और जिनकी धुंधियायी रोशनी से
तुम्हें नफरत थी।

पाप का पक्षधर

पाप और पुण्य के
ख़तरनाक युद्ध मे
मेरा पाप की बाह् पकडना
भले ही गलत हो नैतिक मानदडो मे
लेकिन ऐसा मैंने
अपने निजी लाभ के लिए किया है।

मुझे यह् कभी नही सिखाया गया
कि देश के आगे व्यक्तिगत हित
चूल्हे की राख की तरह फेंक दिया जाता है
कि देश को जोखिम मे डालकर
अपनी दूकानदारी मे इज़ाफा करना
अपनी मा को कोठे पर बिठाने जैसा है।
मुझे ये उपदेश
किसी के मुख से सुनने को नही मिले।
जब से मैने कुल्फी चूसना प्रारम्भ किया
या चौराहे पर फिल्मों के
नंगे पोस्टर देखने शुरू किए
तब से आज तक मेरे हाथ मे
अर्थ और लोभ की ही बाइबिल रही है।
मेरी इजील मे क्रॉस पर लटकना मूर्खता है।
ऐसी हर भूल से बचा जा सकता है।

मैं जब रिश्वत लेता हू
तो स्टेनलेस स्टील के बर्तन खरीद लेता हू—
अपनी पाकशाला के स्तर को ऊंचा करना
कोई पाप नही है।
और है भी तो ऐसा हर पाप

मेरे लिए पुनीत है
क्योंकि पुण्य नही भरवा सकता मेरी गाड़ी में पेट्रोल,
नही भेज सकता हर गर्मी में मुझे पहाड़ों पर।
मेरी पत्नी सिने-तारिकाओं का ऐश्वर्य जीती है
मेरे बच्चे शुद्ध अग्रेजी पाठशालाओं में पढ़ते हैं
और इन्द्रसभा को झुंठलाती है
स्वय मेरी रंगशाला।

इन्ही कारणों से मैं
पाप का पक्षधर हो गया हू
और सुखी हू
क्योंकि अमृत से शून्य दुनिया मे
एक मायावी विषधर हो गया हूँ।

मेरा सोचना

छोटा मैं भी नही
मगर दरख़्त बड़ा है;
सूखा, क्लांत मैं भी नही
मगर दूब हरी है
अभिव्यक्ति मेरी भी है
मगर स्फटिक प्रपात सगीतमय है;
उफान मुझमें भी है
मगर नदी में अनुकूल विद्रोह है……

तो मुझमें जो कुछ भी है
इतना गौण,
इतना अल्प
कि मैं न स्वयं को पहाड़ कह सकता हूं,
न समुद्र,
न दरख़्त,
न पत्थरों की आन्तरिक कोमलता— दूध-झरना।
मगर मेरा दुराग्रह अथवा अहम्
जो मैं स्वीकार नही कर पाता
कि मैं आग नही, एक चिन्गारी हूं,
महासमुद्र नहीं, एक बूंद हूं,
चौड़ा मार्ग नहो, एक संकीर्ण गली हूं
भव्य प्रासाद नहीं, एक ईंट हूं,
यत्र नहीं, एक पुर्जा हूं।

क्या इसका एक मात्र तर्क मेरा अहंकार है
या फिर दरअसल मैं ही सब कुछ हूं—
यह आकाश,
यह धरती

यह समूची बुनावट ?

ऐसा मैं सोचता हूं
मगर यही पर्याप्त है कि सोचता हूं
आश्रितो के इस दौर में
जहा प्रत्येक व्यक्ति भीत पर टिकी पनपी बेल है।

मैं स्वय अपनी निष्क्रियता तोड़ता हूं
और समझता हूं ठीक अपने को उनसे
जो बन्द हैं, न खुले
कलंकित है, न घुले।

समर्पण

आदमियों की अस्थियों से
बनता है अजेय वज्र !
आओ ! आसमान के दरवाज़ों से
देवसम्राट तुम ।
कोई फ़र्क नहीं
तुम सिरस्त्राण पहने हो
अथवा युग-प्रतीक सफेद टोपी !!
ले जाओ जन-जन की हड्डियां
और निःशंक राज्य करो
पांच, दस अथवा पन्द्रह वर्षों तक ।

आशीष

तीरथ, देख ये वोई गली है
जहां जाड़े की धूप खिलते ही,
तू कचे खेलता था
तेरी मां झकियाती-बकियाती आती थी
तू कभी पकड़ मे आता तो कभी भाग जाता था।
ये तेरे वो दोस्त हैं
जो जवानी मे ही बूढे हो गये।
मैंने कहा मिल आओ अपने मन्तरी से,
लँगोटिया है तुम्हारा
भूल सकै है तुम्हे कभी ?

गोपू और नमदू अपने कुरतों की जेबो मे
कचे भरे तुमसे मिलने राजधानी गये थे
मगर तुमने उन्हे ओलखा नही।
या तो इसमे तुमारी नजर का कुसूर था,
या बिनके चेहरो में कोई कमी थी।
लौटकर नमदू ने अपने बालको की पोथी में से
नोंचकर फाड़-फेंक दिया था
करसन-सुदामा वाला पाठ,
और उसका बड़ा बेटा कहता रहा था --
"दादा! सवाल इसी मे से आयेगा।"

तीरथ, ये तूने का किया ?
अब बच्चे गली मे कचे नहीं खेलें हैं
नमदू पीटे हैं उनकू
कहवे है बकरिया चराओ
या ऊमर में भाग जाओ

तेरे माट्टर जी ने तुझे कित्ते पत्तर लिखे,
बौत आशीष देवे थे,
मरे तब यही कहते गये—
"तीरथ ने हमारा सर ऊंचा कर दिया।"
मैंने खुद देखा था
उनकी बगल में बोई बेंत रखी थी
जासे वे तुम सबको मारते थे,
और नीचे को झुका लटका था उनका सर—
बौत ऊपर को खींचा;
मगर वो सीधा हुआ ही नही।
मँढवा कर कमरे में टाँग रखा है
बताशो ने वो कागद जो तुमने मातमपुर्सी पर लिखा था।

बताशो, झुनकी, मुनिया, रन्झा मलकी
सब गरस्थिन बन गयी हैं,
जहां भी बैठती हैं तेरा रौब मारती हैं,
अपने बच्चों को तेरा नाम रटाती हैं।
उस हत्भागन सरुपा की का कहूं ?
बड़ी पागल निकली।
तैंने उससे पियार ई तो किया था
शादी की बात कब चलायी थी ?
रातों को उठ-उठ कर भागे थी।
एक दिन आठ कोस पार कर
रेल की पटरी पर लेट गयी।
पढ़ा होगा तूने इखबारों मे
रेल की पहियों पर चिपका खून
पहुंचा होगा तेरी रजधानी तक।

तीरथ तू हमारा बेटा नही !
तू तो मुलक का है।
तेरे लोग यूं ई कँवे हैं हमसे,
पर मेरे मगज में बात नही आती—
मुलक के कोख होती है, बेटे ?
शायद होती हो।

तो तू मुलक का ही बनकर रह
किसी एक कोख की तो लाज रख।

देख ! ये तेरा मोहल्ला है
इसके आधे घर खडहर हो गये हैं।
सिलीमेन्ट नही मिलता,
चौमासा जब आता है
अपने साथ कइयो को ले जाता है।
बेटे ! मुलक को तो सिर्लमिन्ट मिलती है न ?
देखना वो कहीं खंडहर न हो जाये !
हम सब सह सकते हैं,
पर तेरी बदनामी हमसे ना झेली जायेगी।

हां ! तू जा। मैं क्यों रोकूगी तुझे ?
तो जा और मुलक की ख़ातिर कुछ कर,
हमारी फ़िकर ना कर
हम अपनी झोपडियो मे दिया-बाती खुद कर लेंगे !
तू मुलक मे उजियारा भर।
आशीष···आशीष···आशीष।

रिपोर्ट

अब तो थूक भी शेष नहीं
गला सूखा है—
गिड़गिड़ा और भी सकता था,
मगर···शरीर बहुत आशक्त, भूखा है।
और भूख जब सीमा पार कर जाती है
चेहरा बोलता है बस !
चेहरे से यंत्रणा समझें
ऐसे रहबर अभी नहीं हुए पैदा।

बोल रे ! फिर बोल,
चीख कलक्टरी के आगे,
दे दुहाई,
लगा नारे
ताकि लोग यह तो कहें
"बेचारा बोलते-बोलते मरा था।"

अब यह बात और है
किसी ने उसे सुना अथवा नहीं
मगर पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट में
उस भूखे का पेट
रोटियों से भरा था।

तुमने शायद यही चाहा था !

हम सब
रेत के एक ऊंचे टीले पर बैठे
फेंक रहे हैं रेत
एक दूसरे की आंखो मे ।
हम सभी ईमानदार हैं
और इसलिए सम्मानीय,
क्योंकि हम कभी पकडे नही गए ।
यद्यपि यह मुशकिल नही
लेकिन खुद पकडने वाले हाथों की
बन्द हैं मुट्ठियां—
इन मुट्ठियो को बन्द रहने देना
एक कला है ।
यह कला स्कूल तथा विश्वविद्यालय
नही दे पाते
यह तो इधर-उधर बिखरी पडी है
सडको पर,
बनियों के तख्तो पर,
नेताओ, मन्त्रियों के दमकते चेहरों पर,
फाइलों मे सोने की खान ढूढते
अफसरो की हूण-आखो में—
सब जगह
थाने मे, अस्पताल मे,
कचहरी मे, कलक्टरी मे,
गाव में, शहर मे···
बस बटोरने की तमीज चाहिए...
तमीज जो बाहर मे नही
इसी देश में पनपी, बढ़ी हुई
और अब अमरबेल की तरह चारों ओर व्याप गयी है।

आदर्श और चरित्र की नसबन्दी...
हर दूसरा मकान वेश्यालय है
जहां जाते हैं कुलीनों के पुत्र
तहज़ीब सीखने आम्रपालियों से।
फोन और जुए से चिपकी आम्रपालियां भी
अब वे नहीं रहीं।

सब शिक्षकों को छुट्टी दे दो,
बन्द कर दो विद्यालय, अध्ययन केन्द्र।
बच्चों को वहां भेजो
जहां रेत फेंकी जा रही है,
जहां निर्वसनाएं नाच रही हैं,
जहां तुम्हारे वोटों का पुरस्कार
ह्विस्की गटक रहा है,
सौदे कर रहा है।

तुमने शायद यही चाहा था—
क़ीमतों का बढ़ना,
स्वत्व का बिकना,
और प्रकाश का बुझ जाना।
अब चेहरे दिखायी नहीं पड़ते
बस कारों के पहिये
दौड़ते नज़र आते हैं।

तमीज़

मैंने उनसे पूछा :
"आपकी कार की प्लेट लाल क्यों ?
यह तो पहले राजाओं की होती थी
जो अब समाप्त हुए।"
उन्होंने दंभ के साथ कहा / "मैं जिलाधीश हूं।"
मुझे ज्ञान हुआ कि राजा कभी नहीं मरते
और धीश शब्द को सरकारी मान्यता प्राप्त है।

मुझे एक थानेदार मिले।
मैंने उनसे पूछा : / "आपका वेतन क्या है ?"
उन्होंने मुँह कसैला करके कहा :
"अजी ! यहां वेतन लेने की किसे फ़ुरसत है ?"
फिर वे तथागत् की-सी मुद्रा में बोले :
"केवल वेतन पर मूर्ख जीवित रहते हैं।"

मुझे गजी का कुर्ता-पाजामा पहने
एक पटवारी मिले।
सहमे हुए मैंने कहा :
"आपका यह चौमंजिला मकान !"
उन्होंने कहा :
"रहने दो ! तुम नहीं समझोगे।
देश में दौलत बिखरी है
बटोरने की तमीज चाहिये।"

हमारी जो यह व्यवस्था है
उसमें लोगों की बहुत आस्था है
हर कार्यालय मठ-मन्दिर है
हर कर्मचारी पुजारी-पंडा।

दीवार

फ्रॉस्ट की एक पंक्ति है :
"अच्छी बाड़ें अच्छे पड़ोसी बनाती है।"
आओ ! हम भी अपने बीच
एक दीवार खड़ी कर लें
इतनी ऊंची
कि तुम यह न देख सको
कि मैं इधर क्या कर रहा हूं ?
इतनी मजबूत
कि बरसात अथवा दोस्ती की झूठी लहर
उसे नीचे न गिरा सके !
इस सच्ची-झूठी मर्यादा के उस ओर
तुम चाहे हिरणों का शिकार करो
अथवा आदमियों का;
और इधर मैं धर्म पुस्तकों को अलाव में झोंकूं
अथवा अन्य कोई पागलपन करूं।

इस दीवार के बनने से
कमसकम उपदेश तो सुनने को नहीं मिलेंगे।
तुम चाहे नाग पालो
अथवा नेवले,
हुक्का पियो या लहू,
आदमी की तरह पेश आओ
अथवा जंगली पशु की तरह।
जब मैं देखूंगा ही नहीं
तो कहूंगा ही क्या ?
इसी तरह तुम भी मेरी क्या आलोचना कर पाओगे ?

हम फिर भी पड़ोसी कहलायेंगे,

और अच्छे !
क्यों कि हमारे बीच में अभेद्य दीवार होगी
और हम अनभिज्ञ, अपरिचित होंगे
एक-दूसरे से।
नित्य की कलह से तो
कहीं अच्छी है यह दीवार !
और फिर हम दोनों
इसका सहारा लेकर बैठ सकते हैं,
इसके साये में सो भी सकते हैं

तीसरा व्यक्ति

यह क्या बात है
कि रार तो हमारी है
और अपने फ़ैसले
हम ख़ुद नहीं कर सकते ?
यह क्या बात है
कि कोई तीसरा व्यक्ति
जब भी आता है
हमारे समझौते करा जाता है ?

विपरीत समय

कमी थोड़ी नही
बहुत है,
यही है इन अलसायी क्यारियो के आस-पास।

बच्चे खेल रहे हैं.
क्या सचमुच मे खेल रहे हैं?
चिड़ियों के नुचे पंख
घास पर पड़े हैं
और बूढा पेड टहनिया लादे खड़ा है।

कहां से आवाज़ आयी
आंधी की, बसन्त की या पतझर की?
सब आते हैं,
विचरते हैं,
और गुम हो जाते हैं।
कैसे बात मान ली जाये
कि कुलाचें मारता मृगशावक
कल बच जायेगा
बाबरियो की हूण निगाहो से!

वस्त्र छिन गये हैं
आखें ठेठ देखती हैं
वही जो सच नही है···

थाली मे रखे फूल
अभी तक तो ताज़ा थे··
किसी की नजर नही लगी है
बस समय ही फूलो का नही है।

बांध

रोप दिया है
बांध,
रुक गया है
प्रवाह—
तना हुआ रहता है अब
पानी।

जीत

रावण का क्या ?
उसे तो हारना ही था;
जीत तो मारीच की,
अथवा,
उस कचन मृग की हुई
जिस पर जनकसुता रीझी
और वह भी
राम जैसे श्रेष्ठ वर के होते हुए !!

भीरू

मैं व्यर्थ ही कांपता रहा
दूर कोनों खँडहरो में
भागता रहा।

अब जानने से क्या होता है ?
आख़िरी साँस के खिंचने से पहले का
यह अहसास
कि कायर जिन्दगी का एक क्षण भी नही जीते।

आज जिस गोली से
घायल हुआ हूं
उसका सच बहुत कृतज्ञ हू।
मुझे नही मालूम था
कि मेरे शरीर मे इतना लहू है।

अब एक कायर को
वे शहीद बना देंगे
शहर के उस चौराहे पर
प्रतिमा भी लगा देंगे।

मगर किसी को
यह पता नही चल पायेगा
कि मरने से पहले
उसने पूरे शर्म के पहाड़ को ढोया था
और मन ही मन
अपनी कायरता पर रोया था।

फ़ासले क़ायम हैं

मैं दुष्ट इसलिए हूं
कि शरीफ होना कायरता है।

यह मैंने उसी समय जान लिया था
जब मेरी मां अपने खसम का दूध
खुद पी जाती थी
और थोड़ा मेरे हलक में
उतार देती थी
ताकि उसकी काठी मजबूत रहे
और मैं बड़ा होकर
उसका उपकार मानूं,
कृतज्ञ रहूं।

मुझे अपने बूढ़े बाप की
भिक्खु सूरत और सूखी खांसी
अभी तक याद आती है…।

जो भागते हैं वे शरीफ हैं
जो कतराते हैं वे शरीफ हैं
जो चुप रहते हैं वे शरीफ हैं
जो सज़ा पाते हैं वे शरीफ़ हैं
जो ग़रीब बने रहते हैं वे शरीफ हैं
जो अभिनन्दन नहीं करवा पाते वे शरीफ हैं
जो हाकिम द्वारा सताये जाते हैं वे शरीफ हैं
जो गले को सयार थूक नहीं पाते वे शरीफ़ हैं
जो परिवर्धित मूल्यों पर पुस्तकें नहीं बेच पाते वे शरीफ हैं
जो मंत्री बनने के लिए पन्द्रह सिर उपस्थित नहीं कर सकते वे शरीफ़ हैं
जो हर आरोप, लांछना पर मौन रहते हैं वे शरीफ़ हैं

जो अपने हक के लिए गिड़गिड़ाते हैं वे शरीफ़ हैं
जो परदे के पीछे रहते हैं वे शरीफ़ हैं
जो बस जी रहे हैं मौत के लिए
अगले जन्म में बेहतर जिन्दगी की ख्वाहिश के लिए
वे सब शरीफ है।

इस लघु तालिका के बाद
जो एक लम्बी जमात बचती है
वे सब मेरी तरह उस नस्ल के हैं
जिसका नाम है दुष्ट अथवा शातिर।

मेरे पास मकानात है;
धन है
कारें हैं,
सीमेण्ट है,
चमकती सिल्लियां हैं,
घर में एक
बाहर अनेक बीबिया हैं।

अभाव नाम के विषधर मैं औरों पर फकता हूं
खुद अपने लिए नेवले पालता हूं।
मैंने खरीद रखी हैं सुरक्षा के लिए
कौमें,
ठंडा, गर्म गोश्त,
दोस्तियां,
पेड़, डालियां,
चम्मचें, रकाबियां
और आड़े वक्त के लिए
बड़ी-बड़ी मूछों वाले जल्लाद-जिस्म-तोपची।

मैं मिट नहीं सकता
मैं कभी मिटा ही नहीं था .....।
शराफ़त बदनाम बस्ती से भागी
एक जवान और मांसल औरत है

जो निरीह हिरणी सी हांफ रही है
और देख रही है मुड़कर
एक तनी हुई नली को अपनी ओर।
मैं उसे पनाह देता हूं
वह मुझसे चिपट जाती है
और मैं उसे अपने अभ्यस्त हाथों से
धीरे-धीरे अश्लील कर देता हू
उसमे थोडी हिम्मत भर देता हू
यानी उसकी समूची हया और शराफत छीन लेता हूं।
मैं जानता हूं ऐसी स्थिति मे
वह कही नही जायेगी,
और जायेगी भी तो पुन. लौट आयेगी।

दुष्टता पौरुष का प्रतीक है।
दुष्ट सभी समर्थ हैं
वे डकार भी न लें
और पूरा मुल्क निगल जायें।

ईमानदार जो रहे नौकरी से निकाले गये
देवतास्वरूप गुणवान बेमौत मारे गये
नैतिकता ने उन्हे दाधीच बना दिया
कुटिल इन्द्र सत्ता मे रहे
आसव पिया,
अप्सराएं भोगी,
रस-मग्न रहे।

इतिहास ने बार-बार बताया है
कि भीड व्यक्ति को नहीं पहचानती
भले वह सुकरात हो या यीशु,
समूह पागलपन कर सकता है, शासन नही।
मुझे भीड से नफ़रत है
क्योंकि भीड भेडों का बाडा है
जिसमे एक ही भेडिया उनके भ्रम को तोडने के लिए पर्याप्त है।
भीड कम पानी की सडती पोखर है

जिसमें कीड़े हैं, कीचड़ है,
टिर्र है, काई है
जिसमें बस भैंसें लोटती हैं
श्याम चर्म पर और भी कालिख लेकर निकलती है।
तुम्हें पता ही है
भैंस की चमड़ी बहुत मोटी होती है,
अक्ल शून्य,
उसे इसलिए पालते हैं
कि वह दूध देती है
और लात भी नहीं मारती।

भीड़ एक चकला है
जहां लोग अपना आफरा निकालने जाते हैं
और सब अपने को वाजिदअली शाह बतलाते हैं।

माफ वे करते हैं जो दुर्बल होते हैं
या जो इसके सिवाय कुछ नहीं कर सकते।
मेरे शब्दकोष में ऐसे अनावश्यक शब्दों पर
काली चिप्पियां लगी हैं
मैं नहीं चाहता कि आने वाली पीढ़ियां भी उन्हें पढ़ें,
कायरों की संख्या में वृद्धि हो
और देश डूब जाये।

क्या सोचते हैं आप देश के बारे में ?
क्या यह डूबने से बचेगा ?
एक से एक बड़ा कायर है हमारे यहां
भाषणों और नारों को गढ़ने के सिवाय
हमें आता ही क्या है ?
और देखने के नाम पर
हम भविष्य को नहीं
दीवारों पर चिपके इश्तिहारों
तथा मतपेटी की ढाई इंच दरार को देखते हैं।
है हम जैसा कोई दूसरा द्रष्टा ?

वायदे तोड़ने को
जनता छोड़ने को
अथवा भोगने को—
जनता ससुरी गंवारू महरिया है
साबुन की एक टिकिया पर राजी हो जाती है ।
बड़ी बदबू आती है उसके लहँगे से
कम नहाती है, कम धोती है
न हँसती है, न रोती है
यह तो जैसा भी रखोगे रह लेगी
इसके लिए शहर का हरम,
इन्टीमेट की मादक खुशबू से महकते
परी जिस्मों का स्वाद
क्यो खराब किया जाये ?
क्यो ?

मुझे देश के इन कर्णधारों से कोई शिकायत नही
सिवाय इसके कि
ये ओछे किस्म के शातिर हैं
गांधी के मुखौटे मे
हिटलर का चेहरा छिपाये हैं,
अन्दर से तानाशाह हैं
और बात करते हैं प्रजातन्त्र की,
फासिस्टो के खिलाफ जुलूस निकालते हैं
और खुद सबसे बड़े फासिस्ट हैं ।

ये ऐनकिये,
ये छद्मी चेहरे,
ये लफ्फ़ाजी अभ्यास
ये नेपोलियन, मुसोलिनी के भद्दे सस्करण
ये गौतम-गाधी के पदार्थवादी चेले
देश को डुबोयेंगे ।

मैं उस जलजले के इन्तजार में जीवित हू
जिसमे सभी मोटे पेड़ उखड़ नीचे आ गिरें,

कौयले की क्रूर खदानों में दबे मजदूरों की लाशें
ऊपर आ चारों ओर बिखर जायें
फैक्टरी के बायलर्स की आग
ऊंची इमारतों के हर कमरों में घुस जायें
और धुआं छोड़ती कुतुबनुमा चिमनी
जब नीचे गिरे
तो उन सबको अपने विशाल खंडों के नीचे दबाकर पीस डाले
जो अर्से से आदमी, औरतों और बच्चों को
कच्चा चबा रहे हैं,
ऊपर से इलायची खा रहे हैं।

ऐसा जलजला क्या कभी आयेगा इस देश में ?
क्या कभी लाल होगा गंगा का पानी ?
क्या कभी ताजमहल से दूर हटकर बहेगी यमुना ?
क्या कभी खारा बनेगा चश्मे-शाही का पानी ?
क्या कभी किसी भंगी के माथे पर तिलक लगायेगा
मदुराई का मुख्य पुजारी ?
क्या कभी सभी को तकसीम होगी
देश की जमीन, दौलत ?
क्या कभी प्रजा एकतन्त्र न होकर बनेगी एक हकीकत ?
क्या कभी गुमान होगा बदगुमानों को ?
और गोली से उड़ा दिया जायेगा बेईमानों को ?

खामख्याली ठीक है
जब कायरता जिन्दगी का आभूषण हो
और कृत्य के नाम पर
बस सोचते रहना, सोचते रहना…
बिला नागा आकाशवाणी पर नेताओं के भाषण सुनना
और भ्रम की चादर तानकर सो जाना।
तल्ख़ी और तंगी के बिस्तर पर
बहुत मीठी नींद लेते हैं हम।
यही तो हमारी चिरन्तन विशेषता है
कि कोई कुछ भी चुरा सकता है
सिवाय हमारी नींद के।

कोई छीन सकता है हमसे हमारी दुर्लभ नींद !
कोई कर सकता है हमे सतर्क ?

सतर्क रहने के लिए कुछ गुण चाहिये
जैसे फरेब, घृणा, घात, और बिल्कुल कम नींद,
शैतानी या शकुनिया चालें ··
यह हमसे नही होगा।
हम अपना सिर नीचा कर लेंगे
कहेंगे – पाचाली को विवस्त्र होते हमने नही देखा
हमने नही देखी उसके मास पर टिकी
कौरवो की हवश निगाहे।
हम तो सदा यही कहेंगे
कि पाच पतियो की पत्नी कभी असहाय हो सकती है ?
स्वीकार कर लेंगे वनवास
और जब सुख-भोग का समय आयेगा
हम हिमालय की दुर्गम ऊँचाइयो को निकालेंगे
बर्फ मे गल-गिर-मरने को।
हम सिंहासन पर लात मारते है
कैसे अद्भुत आत्म-त्यागी हैं हम !

वे जो मर गये शरीफ थे
वे जो रह गये कुटिल हैं—
उनके दरवाजो के आगे खड़ा है सूर्य-रथ
सम्पूर्ण आर्यावर्त के राजमार्गों पर
निकलेगी उनकी भव्य सवारी
लोग देखेंगे उनका तेज, उनकी पेशानी
लाखो सिर एक साथ झुकेंगे,
दण्डोत होगी
और फिर वही सामन्ती अदब का अभिवादन—
अन्नदाता, अन्नदाता···।

क्या करेंगे आप इस सहिष्णु,
रूढ़िवादी जमात का ?
जुहार-पसन्दगी, माई-बापी इस कौम का

जो केवल अभिवादन के लिए जीवित है
एक संरक्षित, आदिम कबीले की तरह

क्या महाप्राण कृष्ण हमारे ही देश मे पैदा हुआ था
या अरब के किसी कोने से यहा आ बसा था ?
उससे कुछ सीखा होता।
रास नही राजनीति,
दिमागी दाव-पेच।
पांडवों ने सेना नही केवल उसे मांगा
पूरे युद्ध में उसके एक भी घाव नहीं लगा
मित्र-पक्ष और शत्रु-पक्ष
दोनों ही उसके सामने मिट गए
मगर वह आज भी जीवित है
पूजा होती है उसकी।
यदि वह कुटिल न होता
तो कौरव जीत जाते युद्ध
दुर्योधन के विजय-रथ को
खींचते हुए चलते पांडु-पुत्र
और सौ से भी ऊपर होते
सरजती द्रौपदी के पति···।

पूरे इतिहास पर नज़र डालता हूं
तो केवल एक व्यक्ति को पाता हू
जिसने कृष्ण से रास नही राजनीति सीखी थी,
सहिष्णुता नही, प्रतिघात सीखा था,
अकर्मण्यता नही, कर्म सीखा था—
वह था कुशाग्र मति सम्पन्न चाणक्य।
यदि वह भाग्यवादी होता,
यदि वह भोला, भला होता
यदि वह अपमान को पीकर बैठ जाता,
यदि वह कुटिल न होता
तो··तो
आज कुतुब के पास लोह-स्तम्भ न गड़ा होता,
गंगा के किनारे पाटलीपुत्र की जगह कोई गांव होता

और हम सब सेल्यूकस की सन्तान होते।

शौर्य बाजुओं और शमशीर चलाने में नही होता
शौर्य भेजे मे होता है
और भेजा तुम्हारा या मेरा नही
जिसमे दया भरी है
धर्म भरा है
यानी मवाद भरा है,
ऋचाए भरी हैं
यानी अफीम भरी है।
भेजा वह जिसमे
ईर्ष्या भरी है,
बदले की हिंसक भावना भरी है,
कूटनीति भरी हैं
प्रतियोगी को कदम-कदम पर
पछाड़ने की कुशाग्रता भरी है।
भेजा शकुनि के पास था
युधिष्ठर के नही।
अपमान सहना और राज्य खो देना
अव्वल दर्जे की कायरता है।
भेजा आलमगीर के पास था
दारा के नही।
किताबो मे अकर्मण्यता है,
निरुद्देश्य चिन्तन है,
मात्र शाब्दिक विलास है
जो व्यक्ति को कुछ हासिल नही करने देता
सिवाय इसके कि
वह मुड़े-तुड़े, फटे पृष्ठों पर रेंगने वाला एक कीड़ा है
अथवा शुष्क आखों में समायी विराट पीड़ा है।
जिन्दगी की पुस्तक मदरसे मे नहीं
खुले आकाश के नीचे
उस चौड़े मैदान पर खुलती है
जहां बाज परिन्दों पर झपटता है,
उनका शिकार करता है

और तमाशाई वाह-वाह कर उठते हैं।

यह सच है कि
दुनिया के अधिकांश विजेता और शासक
किसी मदरसे की उपज नहीं थे
उन्होंने किताबें पढ़-पढ़ कर
अपने मस्तिष्क दूषित नहीं किए थे।
आलमगीर अपनी समस्त कुटिलता के बावजूद भी
धार्मिक बना रहा,
और सहिष्णुता तथा मानवीयता का रत्न दारा
कमअक्ल, तिरस्कृत
और अभागा—
जीवन तथा मृत्यु दोनों में

अब तुम्ही देखो
टोपियां किसके सिर पर हैं?
कुर्सियों पर कौन बैठे हैं?
बिगुल किसके लिए बज रहा है?
लक्ष्मी किनके यहां अलंकृत बैठी है?
कौन उंगलियों के इशारों से कहर ढा रहे हैं?
कौन आदमियों के जंगल के स्वामी हैं?
खुद चांदी की डिबिया में से गिलौरियां खा रहे हैं
और अपने खिदमतगारों से जन-वृक्ष कटवा रहे हैं।

मैं जानता हूं तुम्हें कुछ दिखायी नहीं देता
तुम्हें बचपन से यह सिखाया गया है
कि देखने के नाम पर सदा-सदा तुम बस अपना चेहरा देखो
इसके अलावा और कुछ नहीं।

मैं पूछता हूं तुम्हारा चेहरा है भी
या केवल धड़ है तुम्हारी अशक्त टांगों पर?
धड़ जो छिपकली की पूंछ-सा
सदियों से कांप रहा है।
छिपकली की पूंछ तो फिर भी आ जाती है
लेकिन तुम्हारा सुप्त चेहरा

आज तक नही लौटा है;
तभी तुम जुगुप्सित लगते हो
और तभी वे तुम्हारी ओर देखते तक नही।
ऐसी स्थिति मे तुम क्या लडोगे ?
तुम जानते ही नही तुम्हारा शत्रु कौन है,
कौन है जिस पर तुम्हे प्रहार करना है ?
यही तो वजह है कि जब-जब तुमने
हथियार उठाये है
तो उन मूर्ख यादवो की तरह
अपने ही कुल पर,
अपने ही भाइयो पर
और तुम्हारे हाथो जिन्हे समाप्त होना था
वे आज तक सुरक्षित बैठे हैं।
तुम्हे शायद मालूम नही
कि चेहरा छिनने पर आँखें छिन जाती हैं
और तुम धृतराष्ट्र हो जाते हो
जिसके सम्मुख राष्ट्रनायक जुआ खेलते हैं
और पत्नियां औरो के हाथो में फेंक दी जाती हैं

प्रतिकार !
कैसा प्रतिकार ?
जिसके पास ढाल हो, तलवार नही
जिसके पास टांगें हो, मगर हाथ नही
जिसके पास गिडगिडाहट हो, हुंकार नहीं
जिसके पास क्षमा हो, प्रतिकार नही
जिसके पास विनय हो, अहंकार नहीं
जिसके पास निर्धनता हो, टकसाल नही
वह…हा ! वह क्या प्रतिकार लेगा
अपनी जोरू की रानों पर उंगलियां फेरेगा
पिघलकर मोम सा जम जायेगा
और रात काट देगा—
रात ! जिसमें हुक्काम बैठकर साजिशें करते हैं
सत्ताधारण की योजनाए मनाते हैं
जुम और कीमती शराब पीते हैं

नोटों की बोरियां उछालते हैं
और एक पलंग पर तीन-तीन
अहिल्याओं को भोगते हैं।
चिन्ता मत करो
ऋषि इसी तरह ठगे जाते हैं
और शाप से वे डरते हैं
जो कद्दू होते हैं
और भयाक्रांत
मांदों में रहते हैं।
दु:साहसी, शातिर, नुकीले पंजों वाले
प्रतिघाती यात्री विवेकी
कभी रौंदे नहीं गए
जो मूर्ख रहे वे राक्षस कहाये
जिन्होंने पुल बनाये उन्हें बन्दरों की सज्ञा मिली
और देवता वे बन गए
जिन्होंने जुए में औरों को जीता,
छल किया,
अमृत पिया।
किसान को जब मरियल, हड्डियाये बैलों से
हल चलाते देखता हूं
तो लगता है वह अपनी कब्र खोद रहा है
क्योंकि उसकी फसल जब तक
उगती-पकती है
तब तक बनिये का खंजर उसके खोखले सीने के
पार हो गया होता है
और उसकी वेवा जरूरी शोक के बाद
जिन्दगी भर रिरियाती है
या कुछ सयानी हुई तो
कहीं और बैठ जाती है।

नियोग की प्रथा वाले इस देश में
आज चर्म नैतिकता सर्वोपरि है
और बेशुमार औरतें बांझपन की शिकार हैं।
खजुराहो की अद्वितीय संभोग शिक्षा

व पुष्ट देह प्रदर्शन में
यौन-कौतूहल तो दर्शाते हैं
लेकिन यौन-कौशल नहीं—यहां के लोग आज ।
गंथो तन्मयता से कि कलाकृतियां बन जाओ
और क्लीव, बीमार, व शिथिल है पति
तो सूर्य से समागम करो
ताकि गर्भ में पाडु नहीं
कोई तेजस्वी कर्ण हो
जो कहीं भी पले
सूर्य सा दमके
लेकिन कुछ कुटिल हो
गाडीव से टकराने से पहले
जान ले कि उसकी डोरी मे किसकी ताकत है,
और आत्मघाती दान न दे ।

क्या रखा है व्यर्थ के जन-यश मे ?
दान मे अपने प्राण देकर
वाह-वाह लूटनेवाले सही कर्मवीर नहीं होते,
असमय,
धोखे से मरते हैं वे ।
शर-शैया पर लेटे भीष्म से कहो
कि अब शिखडी एक नहीं हजारों हैं
और उनकी आड में खड़े हैं योद्धा ।
शत्रु के आगे हिजड़ा खडा करके
जिसने युद्ध जीता
उस महामानव, उस महाचतुर श्री कन्हैया को प्रणाम ।
भीष्म ! तुम तो यूं ही मरोगे
तुम्हरे पास शौर्य है परन्तु चातुर्य्य नहीं ।

शौर्य घास की रोटियां खिलवाता है
थोथे अहम् को उकेर
तोपों के सामने
खांडों से लड़वाता है ।
भामाशाह जिन्दा है

प्रताप बस याद कर लिया जाता है,
और दौलत आमेर में है
पिछोला में नहीं।
तराजू सत्ता में है
तलवार पर जंग लगी है।
कृष्णकुमारी के मधुरिम ओठों पर
अफीम घुला जहर का पात्र ले आया हूं मैं
बेहद खूबसूरत हिरणी जैसे मासूम चेहरे के आगे
ठिठक गया हूं, मगर...
ओह! विरासत में जहर मत दो
अपनी पीढ़ियों को
इससे तो बेहतर है झुक जाओ
और अपना दाव लगे तो फिर तन जाओ।

कितने लोग मेरे घर से निकाल दिए गए
क्योंकि उन्हें जनेऊ पसन्द नहीं था
और उन्होंने तेमूरी गिलास में पानी पी लिया था।

ए धर्मगुरु!
ए व्यवसायी!
ए धमगादड़!
कथावाचन, प्रवचन, भय-प्रचार
यानि ढोंग करने से पहले
अपने टेंटुए के नीचे
थोड़ी मदिरा डाल ले
ताकि तेरे शरीर में अधिक ऊर्जा आए
और लोग तेरे चेहरे पर तेज देख सकें
तेरी बनावटी लाल आँखों से डर जायें
और जब जायें
तो अपनी जेबें खाली करते जायें।
ए परजीवी!
आदमी जिए या मरे
तुझे परोसा मिलता है
बदले में तुझसे स्वर्ग का भरोसा मिलता है

स्वर्ग !
जिसका स्वप्न तक भी तूने
आज तक नहीं देखा है
ए सोमनाथ के लौंडे !
तू मन्त्रों से शत्रु को परास्त कर
और जब मैदान हाथ से निकल जाये
तब तू कन्दराओं में छुप
सुख समृद्धि का जाप कर।

गली राम की हो या हनुमान की
विष्णु की हो या करसन भगवान की
सब गलियों में एक मोटी तोंद बैठी मिलेगी,
इस तोंद के पास भगवान का परमिट है।
आओ मार्टिन लूथर, आओ !
क्या विश्व के मानचित्र पर
तुम्हे यह देश नहीं मिला है ?
शायद न मिला हो
क्योंकि यह देश नहीं, एक मंडी है
जहां हाथों में आयुध नहीं डंडी है।

कैसा पतित हूँ
अपने ही देश की निंदा करता हूं
जिस थाली में खाता हूं
उसी में छेद करता हूं।
शायद मुझे घूस नहीं मिलती
शायद मेरे बच्चे आटे का घोल पीते हैं
शायद मेरे एकलव्य ने अपना अंगूठा
काटकर दे दिया है
राजपुत्रों के यश के लिए
शायद मेरे पिता ने मेरा यौवन छीन लिया है
शायद मुझे सूतपुत्र कहकर अपमानित किया गया है
शायद मैं मणिहीन हूं—
कुछ तो करूंगा ही मैं
और नहीं तो प्रलाप ही।

नही…यह नहीं…
मुझे हथियार उठाना चाहिए
एक स्वाभिमानी योद्धा की तरह
(फिर वही गलती !)
तो फिर कदमों मे लोट जाना चाहिए
एक झुकी हुई पूछ वाले कुत्ते की तरह
(ओल-वृष्टि मे पिटा हुआ)
मैं काटना चाहता हूं उनकी पिंडलियां
पूर्व इसके कि नगरपालिका की गाड़ी आए…
मैं जानता हूं वे मुझे मार देंगे
और मैं मरना नही चाहता
यहां कोई नही मरना चाहता अब।
सरफरोशी की तमन्ना वाले जो थे
वे आज ऊपर से झांककर देखें
कि उन्होंने अपने सिर किनके लिए कटवाए ?
इनके लिए जो आज अपने ही आदमियों के सिर काट रहे हैं,
वातानुकूलित कमरों मे बैठे
समाजवाद पर पुरजोर बहस कर रहे हैं
या दिल्ली मे आयी भगतसिंह की मां का स्वागत कर रहे हैं !
वृद्धा सोचती है उसके एक नही लाखों बेटे हैं
सक्षम हैं,
शासक हैं,
और खुश हैं।
वह लौट जाती है मगर
रस्सी के फन्दे में लटकता एक शरीर
उसकी आंखों के आगे झूल जाता है
और इश्तिहारों से भरा रंगीन शहर
गांव के मुहाने तक चलता है उसके साथ।
इधर, उधर, हर जगह
आज भी शहीद हो रहे हैं देश-पुत्र
क्योंकि उनका कहना है
कि देश अभी-आजाद नही हुआ है,
घरों की छतें कमजोर हैं
और सीमेंट कारखानों से निकलती तो है

पर पता नही जाती कधिर है ।
ससद में बहस करने के बाद
समाजवादिया चेहरे बन जाते हैं
फिर वही टाटाई, बिड़लाई, माफती, महेन्द्री
और उनकी हिफाजत के लिए
चलती रहती हैं गोलियां
वे कुछ दान दे देते है औरतो को
जो वेवा हो गयी,
पुचकार लेते हैं उन बच्चों को
जो अनाथ हो गए
देश बाढ़ मे डूब जाता है
खड़े रहते हैं महल
और ससद के शाही गलियारो मे आक्रोश नही,
गूजती रहती है पचवर्षीय खिलखिलाहट
उधर लोगो के सिर लुढके पड़े हैं
इधर गमलो में खिल रहे हैं वैभव के फूल ।

इस बार रावण ने नही बताया है
विभीषण को अपना रहस्य ।
तभी एक मस्तक कटता है,
दूसरा तुरन्त उग आता है ।
राम की बुद्धि काम नही दे रही
जन-नेता की उम्र भी तो देखो
खुद से परेशान है वह !
जनता को साया था
जो आपस में ही मर फुटेवल कर रही है
पुनः अपनी कब्र खोद रही है ।

कमजोर कन्धों पर क्रांति का बोझा
एक भिक्षुक को गणित सिखाना है ।
आंधी गयी थी, पुनः आयी है
क्या फिर से उसे बुलाना है ?
आंधी अच्छी थी
यदि उसमें बरगद उखड़ते

लंगोट की जगह नक़ाब उलटते
और उसके डोल जाने के बाद
समूची धरती पर एक नई इबारत उभर आती'''
और आज जो यह नयी हवा डोली है
(जो कल एक ज़लज़ले से निकली थी)
इतनी खामोश है कि
इसके लेने का अहसास ही नहीं होता।
उस आंधी के बाद की
डरी-डरी, रुकी-रुकी यह हवा ''!!
ये लोग शायद कुछ भले हैं
देखना समय से पहले ही मरेंगे

मगर हवा कैसी भी हो—उग्र अथवा शान्त
कुछ नहीं होगा इससे !
आग लाओ, आग !
आग जो काली की बाहर निकली लम्बी जिह्वा सी
लपलपाती हो,
विकराल हो,
आग जो कभी जंगलों में लगती है
और सब कुछ सियाह धूल कर देती है
उसके बाद जो किल्ले फूटते है
वे किसी की दुहाई नहीं देते
या तो वहां ऊसर होगा
या फिर नवीन हरापन।
आग से बहुत भय लगता है
आग चाहे एटमी हो
या लेनिनी
इसमें एक बार सर्वस्व जलता है।
आग हमारे यहां शुद्धि का प्रतीक है
यानी हवन, शादी और चिता
आग को पालतू कर लिया है हमने
आग ब्राह्मणी हो गयी है हमारे यहां।
आग परदे पर है,
जीवन में नहीं

अंकुर, निशान्त की बातें करो
शवाना को चाहो
और भूल जाओ मुशकिल सा नाम बेने गल।
वैसे भी तुम जानते हो
यह आग लक्षमण-रेखा से बाहर नही आएगी
और तुम्हे,
तुम्हारी दौलत को नही जलायेगी।

संघर्ष करना
आदमी होने की शर्त है
और इसके लिए गीता ठीक है, कुरान ठीक है,
अचकन मे गुलाब का फूल नही
हाथो मे तीर-कमान ठीक है।

और तुम्हारे हाथ मे लेखनी !
और किसी के हाथो मे कारगर हथियार होती…
तुमने लिखा तो बहुत कलमघिस्सू !
मगर पान और पसारी वाले के यहां
रद्दी के ढेर मे
पानी के भाव बिकती है
तुम्हारी बुद्धि।

बुद्धिजीवी एक टाइटल है
जो सियासत के नायकों ने
खैरात मे बख्शा है
उस छोटी सी जमात को
जो कागज पर सिरमौर बनी रहे
और हकीकत मे
रेल की पटरियों सी बिछी रहे।

यहां प्रत्येक लेखक
कॉफीहाउस मे क्रांति धर्मी होता है
और घर पहुंचकर वह रसोई मे
सूखी रोटियां तलाशता है

या फिर सोई हुई पत्नी के
अंगों को उघारता है।
बुद्धिजीवी !
तुम्हें पद्मश्री मिली या नहीं ?
मिलेगी।
यश, धन, सम्मान —
मगर उन्ही को जो खरीद लिए गए हैं
जो वफादार हैं,
पालतू हैं
और जरूरत के वक्त
जो आग पर पानी छिड़क सकते हैं।

और मैं ?
रोटी और देह की हसरत का ये कवि
इतनी ऊंची,
उग्र बातें करता है,
अपने ही पारम्परिक घर की
जड़ें खोदता है,
गलियों में पुष्प नहीं
बस पान की पीक फेंकता है,
किसी से खुश नहीं
सदा नाराज रहता है।
मरेगा यह मयूर का चेला
और तुम भी कैसे अहमक हो
नाग पाल रहे हो
जो तुम्ही को डसेगा।
ये विभीषण,
ये कंस,
ये दुर्योधन,
ये महज अदना-सा आदमी !
उठाओ !
उठाओ अपने हाथों मे पत्थर
और मारो इसे,
खत्म करो।

यह बहुत मामूली-सा काम है
तुम्हारे लिए,
और इस देश मे
पत्थरो की कोई कमी नही
और मुझे एक ऐतिहासिक मृत्यु से
कोई एतराज नही।
मैं मरूगा ही तो !
मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हू—
मेरी तरह लाखों-करोड़ो
बस पैदा हुए थे।